नयी सदी के हिंदी उपन्यासों में किसानों का संघर्ष और आत्महत्याएँ

डॉ. जयश्री भास्कर वाडेकर,
श्रीमती दानकुंवर महिला महाविद्यालय,
जालना 431203 (महाराष्ट्र)
ई–मेल: dr.jbwadekar@gmail.com
भ्रमणध्वनी : 9923839174, 9405530579

सार :

किसानों के संघर्ष किसी भी समाज की अद्वितीयता और उसकी अद्वितीयता का हिस्सा हैं । इसके अलावा, नयी सदी के उपन्यासों में किसानों के संघर्ष उनकी सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक स्थितियों को भी दर्शाते हैं और इसे उनके जीवन की अद्वितीयता का हिस्सा बनाते हैं । आजादी के पहले शोषकों को किसान समझ सकता था । लेकिन आज उसका चालाकी से शोषण किया जा रहा है । इससे शोषकों को पहचानना भी मुश्किल हुआ है ।किसानों की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार तत्व और किसान आत्महत्याओं की जमीनी सच्चाई नई सदी के इन उपन्यासों में यथार्थ रूप में प्रकट हुई है ।

बीज शब्द : मौसम के साथ जुआ, औद्योगिक क्रांति, ऋण, संघर्षों की त्रिवेणी आदि ।

प्रस्तावना :

धरती और किसान का अटूट रिश्ता है, वह अपनी जमीन से सर्वाधिक लगाव रखता वही उसका सब कुछ है । दरअसल कृषक समाजों के लिए कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि उनकी जीवन शैली है ।भारत कृषि प्रधान देश माना जाता है । आज भी सत्तर फीसदी लोग ने जीवन यापन के लिए कृषि को आधार बनाया है । समय की मांग के अनुसार कृषि के उत्पादन में परिवर्तन होना लाजमी है । इग्लैंड से भारत तक का औद्योगिक क्रांति का सफ़र और भारत में हरित क्रांति होने से कृषि उत्पादन में काफी बदलाव आया है परन्तु किसान किसी न किसी रूप से शोषित और प्रताड़ित रहा है ।भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि और किसान है । किसानों की उन्नति से ही देश की उन्नति संभव है । किसान पूरे देश का अन्नदाता है । वैश्वीकरण के दौर में उसकी भी स्थिति में सुधार होगा ऐसा लगा था। लेकिन आज के बाजारवादी दौर में वह हाशिए पर चला गया है । हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं किसान जीवन की विधिक छवियों का प्रमाणिक अंकन समय–समय पर हुआ है । प्रेमचंद ने अपने रचनाओं के माध्यम से किसान को साहित्य में एक मुकम्मल जगह प्रदान की। उन्होंने किसान जीवन को बहुत करीब से देखा और फिर उसको अपने लेखन का केन्द्र बनाया। प्रेमचंद के पश्चात् ग्रामीण जीवन पर बहुत लेखकों ने उपन्यास और कहानियां लिखी जो उल्लेखनीय रही है । साथ ही हिन्दी कविता में भी किसान जीवन की विविध छवियां अंकित है ।किसानों का संघर्ष एक व्यापक विषय है जो भारतीय समाज में गहरे रूप से अपेक्षित है ।

आजादी के इतने साल बीत जाने पर भी किसानों को न्याय नहीं मिल पा रहा है । वह समस्याओं के मकड़ जाल में घिरा हुआ है । कभी प्राकृतिक आपदाएं तो कभी सरकारी नीतियों से वह परेशान हो रहा है । उसकी फ़सल को उचित मूल्य न मिलना भी आज एक गंभीर समस्या हो चुकी है । अच्छे बीजों की उपलब्धता और वितरण की असमानता की समस्या ने भी किसानों का जीना मुश्किल किया है । किसानों के लिए सारे हालात ऐसे हैं कि “जिंदा कैसे रहा जाए ?” इस स्थिति में वह फांसी के फंदे को

अपनाकर आत्महत्या कर रहा है । अब तक तीन लाख से अधिक किसानों ने आत्महत्याएं की हैं । किसान आत्महत्या आज चिंता का विषय बना है और वह भी विशेषकर कृषि प्रधान देश में ।

आत्महत्या के कारण:

1. आर्थिक संघर्ष: बजट की कमी, किसानों के लिए अधिकांश बजट में कमी होती है, जिससे उन्हें उचित मूल्य मिलने में मुश्किल होती है ।ऋण की बढ़ती ब्याज दरें: ऋण लेने के लिए ब्याज दरें बढ़ गई हैं, जिससे किसानों को उचित लाभ नहीं मिल पा रहा है ।

2. तकनीकी संघर्ष: बुनियादी तकनीक की कमी: किसानों के पास अधिकांश बुनियादी तकनीक नहीं है, जिससे वे अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं ।

3 अभाव और अद्यतन तकनीक: अधिकांश किसान अद्यतन तकनीक के अभाव में हैं, जिससे उन्हें अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं ।

4 भूमि संघर्ष: किसानों के पास अधिकांश भूमि नहीं है, जिससे वे अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं ।

5 शिक्षा और जागरूकता: अधिकांश किसान शिक्षित नहीं हैं, जिससे उन्हें अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं ।

6 राजनीतिक संघर्ष: अधिकार की कमी: किसानों के पास अधिकांश अधिकार नहीं हैं, जिससे वे अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं ।

किसान प्रत्येक युग में शोषणकारी व्यवस्था के लिए 'नरम चारा' रहा है । कभी वह सामन्ती शक्तियों के क्रूर शोषण का शिकार बना तो कभी साम्राज्यवादी ताकतों ने अपने पोषण के लिए उसे आहार बनाया। पूँजीवादी सभ्यता उसे बेघर करने की जिद पाले बैठी है । खेत–खलिहान उजाड़े जा रहे हैं । ऊपर से प्रकृति की निर्मम मार ने उसे असहाय बना दिया है । हाड़ –तोड़ मेहनत करने के बाद भी अधपेट सोना और छोटी–छोटी खुशियों के लिए तरसते रहना उसकी नियति सी बन गई है । उसका जीवन अभावों की भेंट चढ़ता हुआ दुख की महागाथा बन जाता है ।हृदयहीन व्यवस्था उसे निरन्तर निगलती जा रही है । ऊपर से शान्त दिखने वाली नदी की तरह जिसकी भँवरें भीतर–ही –भीतर मनुष्य को दबाकर तलहटी में लगा देती हैं और दूसरों को वह तभी दिखाई देता है जब उसकी लाश उतराती हुई बहने लगती है ।

किसान जीवन पर केन्द्रित शिवमूर्ति का 'आख़िरी छलांग' उपन्यास है । जो प्रेमचंद की परंपरा की ही एक कड़ी दिखती है । 'आख़िरी छलांग' उपन्यास का कथानक परस्पर उलझी हुई किसान जीवन की अनेक समस्याओं का जंजाल है । कथानक का आधार पूर्वी उत्तर प्रदेश का ग्रामांचल है । इसका नायक पहलवान एक किसान है । उसके सामने विरासत में मिली तथा नयी विकास नीतियों के कारण निर्मित अनेक समस्याएँ हैं । वह अपनी सायानी बेटी के लिए दो साल से वर खोज रहा है , बेटे की इंजीनियरिंग की फीस का जुगाड़ नहीं हो रहा है, तीन साल से गन्ने का बकाया नहीं मिल रहा है, सोसायटी से खाद के लिए लिया गया कर्ज चुकता नहीं हुआ है । हर दूसरे महीने में ट्यूबवेल के बिल की तलवार सिर पर लटक जाती है । ऐसी कई समस्याओं को पहलवान किसान के माध्यम से उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में उठाया है । शिवमूर्ति ग्रामीण रचनाकार हैं । उन्होंने किसानों की समस्याओं को समझा तथा उनकी समस्याओं को महसूस किया है । पहलवान महसूस करता है कि जैसे नहर के पेट भीतर सिल्ट भर जाती है उसी तरह किसान की तकदीर में भी साल दर साल सिल्ट भरती जा रही है । अपनी किसान जीवन की समस्याओं से तंग आकर वह इस व्यवस्था से प्रश्न करता है कि "सरे हालत तो मर जाने के हैं । जिंदा कैसे रहा जाए। "[1] आज लेखन के क्षेत्र में किसान धीरे–धीरे गायब होता जा रहा है । ऐसे भीषण समय में प्रेमचंद आज भी हमारे लिए प्रासंगिक और समकालीन है क्योंकि न किसानों और जमीन की समस्या हल हुई है न भूमिहीन मजदूरों को श्रम शोषण से मुक्ति मिली है, बल्कि उसमें स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों और अल्प संख्यकों के नये आयाम और जुड़ गए। प्रेमचंद की संवेदना, सरोकार और दृष्टि ही उनकी परम्परा है । जिसे हम आज जल,

जमीन और जंगल के असमान वितरण के संघर्ष के रुप में देख रहे है । उपन्यासकार संजीव ने अपने उपन्यास 'फांस' में किसान जीवन की विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है । उन्होंने किसानों की मूलभूत समस्या खाद, पानी, बीज, बिजली की समस्या, प्राकृतिक समस्या, फसल का उचित मूल्य न मिलने की समस्या, कर्ज की समस्या तथा आत्महत्या के कारणों को बड़े ही बेबाकी के साथ अपने उपन्यास में दिखाया है । उपन्यासकार ने कर्ज की समस्या को अपने उपन्यास में इस तरह व्यक्त किया है– "अगले महीने बैंक का २५ हजार का कर्ज अदा करना है । आज गुढ़ी पाडवा है–मराठी नववर्ष। ... "फर्स्ट क्लास डिनर है आई ।"... "ये जो भात है न आई, इसमें स्टार्च है, इसका माड न फेंको तो चावल की सारी ताकत बची रहती है, फिर मावा ! मेवा है मेवा ! ताकत ही ताकत ! मजबूती ही मजबूती !"... "इसके सामने नासिक का किसमिश फेल, रत्नगिरि का हापुस फेल और कलमी के साग में आयरन ही आयरन । और स्वाद?... शुभा सामने आकर खड़ी हो गयीं तो झेप गया पूरा परिवार ! शुभा ने तरस खाती जुबान से कहा –"आज नववर्ष है । आज तो कुछ कायदे की चीज बना लेती ! चलो मैं देती पूरण पोली !" नहीं वहिणी कोई तो दिन आएगा, हम भी पूरण पोली और ढेर सारा पकवान बनाएँगे। आज रहने दो। ""मगर क्यों ?""वो सुनील काका ने कहा है न कि जब तक कर्ज न उतार लो....।"समझी। अरे तुम मियां – बीवी ! तुम्हें तपस्या करनी हो, शौक से करो, मगर मुलगियों को तो बख्श दो ।"[2] किसानों की समस्याएं औपनिवेशिक शासन की शोषणपरक व्यवस्था से जुड़ी हुई हैं जो प्रमुख रुप से जमींदारों के अत्याचार, लगान, इजाफा, बेदखली, बेगारी के रूप में सामने आती है (प्रेमचंद: प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, गोदान)आजादी के तुरन्त बाद जमींदारी प्रथा के अंत की तथाकथित घोषणा और जंमीदारों के जोड़–तोड़, तीन–तिकड़म से अपनी ठसक को कायम रखने की प्रयास दिखाई देता है,जिसके शिकार अन्ततः किसान–मजदूर ही होते हैं. (नागार्जुन:बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ). सत्तर के दशक में हरित क्रांति के लाभ और उसके बंटवारे के सवाल जैसे–बड़े किसान बनाम छोटे किसान, किसान बनाम खेत–मजदूर, क्षेत्रीय असन्तुलन जैसे मुद्दों ने किसान समस्याओं को जटिल और गतिशील बना दिया।किसान जीवन को ही केंद्र में रखकर पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास की रचना की है ।अकाल में उत्सव' में किसान जीवन की छोटी– छोटी समस्याओं को भी कथाकार ने जगह दी है । किसानों की मूलभूत समस्या के.सी.सी. समस्या, प्राकृतिक समस्या तथा सरकारी मुआवजा जैसी समस्याओं को कथाकार ने बड़े ही गहराई के साथ चित्रित किया है । किसानों की फसल नष्ट होने पर मुआवजा न मिलने की समस्या को सुबीर जी ने अपने उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है – "लेकिन सर किसान तो सरकार के ही भरोसे है न ? अगर सरकार उसको मदद नहीं करेगी तो कौन करेगा ? खेतों में खड़ी फ़सल अगर बरबाद हो गई, तो किसान क्या करे, क्या मर जाए ?" आगे सरकारी अफसरों के माध्यम से किसानों के प्रति सरकार का घिनौना चेहरा भी इस उपन्यास में प्रस्तुत होता दिखाई पड़ता है–"तो मर जाए ? सरकार के भरोसे बैठा है क्या ? दुनिया में सब अपने–अपने भरोसे बैठे हैं । आपको किसने कहा है खेती करो ? मत करो अगर नुकसान का इतना ही डर है तो। जब कहा ही जाता है कि खेती तो मौसम के भरोसे खेला जाने वाला जुआ है, तो क्यों खेलते हो इस जुए को? किसी ने कहा है क्या आपसे? मत करो खेती कोई दूसरा काम करो ।"[3]

देश की अर्थव्यवस्था के विकास में किसानों का अहम योगदान है । आज किसानों की उत्पादन क्षमता बहुत बढ़ गयी है । लेकिन सरकार उनके फसलों को उचित समर्थन मूल्य नहीं बल्कि न्यूनतम समर्थन मूल्य दे रही है । फसल नुकसान होने पर पुख्ता सरकारी प्रावधान नहीं है । फसल बीमा का लाभ केवल कुछ बड़े किसान ही ले पा रहे हैं । लघु और सीमांत किसान के लिए सरकार की कोई योजना नहीं है । जबकि आकड़ों के अनुसार– "भारत में 60 करोड़ अनुमानित किसान हैं जिसमें से 80% किसान छोटे किसान हैं, शेष 20% बड़े किसान हैं ।....किसान क्रेडिट कार्ड कर्ज में फसानें का एक तरीका है । किसान कर्ज में डूबना नहीं चाहता लेकिन सरकार उसे कर्ज देकर डूबा रही है । फिक्की (एफ.सी.सी.आई.) और एसोचेम ठेके पर खेती कराने में लगे हुए हैं ।"[4] रणेंद्र का 'गायब होता देश' दरअसल विकास के नाम पर आदिवासी किसानों को लूटने और उन्हें जबरन विस्थापित करते जाने का करुण

आख्यान है जो धीरे–धीरे हाशिए पर होते हुए लुप्त होने की कगार पर हैं । मुख्य धारा में इसको लेकर कोई विशेष हलचल या विक्षोभ नहीं दिखता है पर इन सबके खिलाफ आदिवासी अपने जीवन की सबसे कठिन लड़ाई लड़ रहे हैं । विकास की कीमत वे अकेले ही कब तक चुकाएगें जबकि उनका अस्तित्व ही खतरे में है इसलिए आदिवासियों का संकल्प अटल है कि 'जान देगें पर जमीन नहीं देगें'।

उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा है । इसके युग जीवन सापेक्ष स्वरुप तथा निरन्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए इसे आधुनिक साहित्य की केन्द्रीय विधा भी कहा जा सकता है ।आज का समय तीव्रता, गति, परिवर्तन तथा अस्थिरता का है । उपन्यास अशान्त और अस्थिर युग की उपज है, जहाँ लोगों के साथ कुछ न कुछ घटनाएं घटती रहती हैं और लोग परिवर्तित होते रहते हैं । अत:इस अस्थिर और गतिशील युग में निरन्तर परिवर्तित होते हुए मनुष्य की कथा कहने तथा उसकी बदली हुई मानसिकता को अभिव्यक्ति देने के लिए उपन्यास विधा सर्वाधिक उपयुक्त विधा के रुप में स्थापित हुई है । यूरोप में उपन्यास का जन्म भले ही मध्यवर्गीय जीवन की महागाथा के रुप में हुआ हो लेकिन भारतीय उपन्यासों विशेष कर हिंदी पट्टी के लेखकों ने किसान जीवन और स्त्री दुखों को अपने उपन्यासों की विषय वस्तु बनाया. प्रेमचंद ऐसे किसान–केन्द्रित उपन्यासों की श्रृंखला के पहले और सशक्त लेखक हैं जो आगे चलकर नागार्जुन, रेणु, भैरव प्रसाद गुप्त, मार्केन्डेय, विवेकी राय से होती हुई रामदेव शुक्ल, मिथिलेश्वर,रामदरश मिश्र, शिव प्रसाद सिंह, जगदीश चंद्र, संजीव और पंकज सुबीर तक विस्तार पाती है । इनके उपन्यासों में किसान संघर्ष के कई शेड्स हैं क्योंकि न किसानों की जमीन की समस्या हल हुई, न भूमिहीन मजदूरों को श्रम–शोषण से मुक्ति मिली, बल्कि उसमें स्त्रियों, दलितो,आदिवासियों और अल्पसंख्यकों के नए आयाम और जुड़ गये। कर्ज में फंसे किसानों की आत्महत्यायें, विकास के नाम पर हृदयहीन विस्थापन, रोजगार के लिए होरी की सन्ततियों का शहरों में पलायन,कृषक महिलाओं का शोषण, आदिवासियों पर निर्मम अत्याचार, मिलों –फैक्ट्रियों और कोयले की खानों में खटते किसान–पुत्रों की व्यथा–कथा और शोषण तथा इसके खिलाफ पनपते आक्रोश और संघर्ष की चेतना से इनके उपन्यास महत्वपूर्ण हो गये हैं ।

किसान प्रत्येक युग में शोषणकारी व्यवस्था के लिए 'नरम चारा' रहा है ।कभी वह सामन्ती शक्तियों के क्रूर शोषण का शिकार बना तो कभी साम्राज्यवादी ताकतों ने अपने पोषण के लिए उसे आहार बनाया। पूँजीवादी सभ्यता उसे बेघर करने की जिद पाले बैठी है । खेत–खलिहान उजाड़े जा रहे हैं, ऊपर से प्रकृति की निर्मम मार ने उसे असहाय बना दिया है । हाड़ –तोड़ मेहनत करने के बाद भी अधपेटे सोना और छोटी–छोटी खुशियों के लिए तरसते रहना उसकी नियति सी बन गई है । उसका जीवन अभावों की भेंट चढ़ता हुआ दुख की महागाथा बन जाता है । हृदयहीन व्यवस्था उसे निरन्तर निगलती जा रही है । ऊपर से शान्त दिखने वाली नदी की तरह जिसकी भँवरें भीतर–ही –भीतर मनुष्य को दबाकर तलहटी में लगा देती हैं और दूसरों को वह तभी दिखाई देता है जब उसकी लाश उतराती हुई बहने लगती है ।

निष्कर्ष:

नयी सदी के उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य यह है कि वे समाज को उनके संघर्षों और आत्महत्याओं के बारे में जागरूक करें और उन्हें समाज की ध्यान में लाएं। इन उपन्यासों में किसानों के जीवन की वास्तविकता, उनके संघर्षों की गहराई और उनके आत्महत्या के कारणों को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है । इन उपन्यासों के माध्यम से किसानों के संघर्षों और आत्महत्याओं की वास्तविकता को समझाने का प्रयास किया गया है ताकि समाज को इस बारे में जागरूक किया जा सके।सत्तर के दशक में हरित क्रांति के लाभ और उसके बंटवारे के सवाल जैसे–बड़े किसान बनाम छोटे किसान, किसान बनाम खेत–मजदूर, क्षेत्रीय असन्तुलन जैसे मुद्दों ने किसान समस्याओं को जटिल और गतिशील बना दिया। पंचायती राज्य व्यवस्था ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण के साथ –साथ किसानी –दुनिया में सत्ता के प्रतीकों में भी मूलभूत परिवर्तन किया। यह वह दौर है जब लगान, बेदखली, बेगारी जैसे मुद्दे या

तो समाप्त हो गये अथवा हाशिए पर आ गये। मंडल–कमंडल के दो किनारों के बीच बहती भारतीय राजनीति ने गांवों में एक नई सुगबुगाहट जरूर पैदा की जिसने जातीय पहचान को और पुख्ता किया। दलितों और पिछड़ों की सत्ता में बढ़ती भागीदारी ने सामन्ती तत्वों को चुनौती देना प्रारम्भ किया। ये ग्राम केन्द्रित उपन्यासों में व्यक्त संघर्ष के नये आयाम हैं । नई आर्थिक नीति, मल्टी नेशनल कंपनियों के खेल,भूमि अधिग्रहण, कर्ज का बढ़ता दुष्चक्र,उत्पाद का उचित मूल्य न मिल पाना और किसानों की बढ़ती आत्महत्याओं ने एक बार फिर उपन्यासकारों का चलने देगें, न खुद इसमें काम करेगें, न औरों को करने देगें. 'की अनुगूँज इस संघर्ष की व्यापकता का प्रमाण है ।

संदर्भ सूची:

1) शिवमूर्ति– आख़री छलांग, पृष्ठ सं.– 79

2). संजीव– 'फांस' पृष्ठ सं. – 61–62

3). पंकज सुबीर– अकाल में उत्सव, पृष्ठ सं.–170

4) अखिल अखिलेश– मीडिया वेश्या या दलाल, हलकान किसान, पृष्ठ–288–289